२. गिरे तो गिरे, पर उठे भी बहुत ऊँचे

श्रेष्ठिपुत्र अरणक ने पानी पीकर कटोरा खाली किया ही था कि एक दासी ने उसे ऊपर-ही-ऊपर हाथ में ले लिया। श्रेष्ठी दत्त भी पुत्र के पास बैठे थे। सेठानी भद्रा उसी समय आई थीं। उन्होंने अपने पति को मीठी झिड़की दी—

"ऐसा कब तक चलेगा ? कहते तो यह हैं कि माताएँ लाड़-प्यार में पुत्र को बिगाड़ देती हैं। पर मेरे अरणक को तो तुम—उसका पिता बिगाड़ रहा है। इसे इतना तो करने दो कि पानी पीकर कटोरा नीचे रख दे।"

"मेरा बस चले तो अरणक को पानी पीने का कष्ट भी न करना पड़े। पानी भी दासी पिये और इसकी प्यास बुझे।

"अरणक की माँ, तुम वे दिन भूल गईं, जब हम सन्तान के लिए तरसते थे। एक सन्तान के बिना ही हमें अपना ऐश्वर्य बड़ा भयानक लगता था। जाने कौन-सा पुण्य बचा था कि मैं पिता बना और तुम माता बन गईं। हमें अरणक जैसा सुन्दर, योग्य और चरित्रवान पुत्र मिला।"

"यह सब तो ठीक है स्वामी!" सेठानी भद्रा ने कहा—"पर अब अरणक बड़ा हो गया है। कल-परसों उसके विवाह की तैयारी भी होगी। अब उसे अपने काम स्वयं करने दीजिए। अब भी वह धायों और दासियों के हाथ का खिलौना बना रहेगा तो वह अकर्मण्य, आलसी और कुण्ठित हो जायगा।"

"तुम चिन्ता मत करो।" श्रेष्ठी दत्त ने कहा—"जब ऐसा अवसर आएगा, तब वह सब कुछ कर लेगा। जब तक माता-पिता की छाया बनी है, तब तक मैं उसे फूल की तरह ही रखना चाहता हूँ।"

तगरा नगरी के श्रेष्ठी दत्त और सेठानी भद्रा को बड़ी आशाओं के बाद पुत्र मिला था। अतः दोनों का ही पुत्र अरणक पर अतिशय प्यार था। फिर भी पिता उसकी देखभाल पर अधिक ध्यान देते थे। वे चाहते थे कि अरणक को कुछ न करना पड़े।

अरणक बड़े सुखों में पल रहा था। उसे कोई पूछे कि गरमी क्या होती है तो वह नहीं बता पाता, क्योंकि ग्रीष्म-शीत के कष्टों के अनुभव का अवसर ही उसे नहीं मिला था। वह ऐसा फूल था जो चाँदनी में भी कुम्हला जाए। द्राक्षा खाने से उसके होंठ छिलते थे। पिता के लाड़-प्यार ने उसे अत्यधिक नाजुक, सुकुमार और संवेदनशील बना दिया था।

एक बार अर्हन्मित्र मुनि शिष्य मुनियों के साथ तगरा नगरी में पधारे। उन्होंने अपनी देशना में कहा—

"हम साधुओं को भी चिन्ता होती है, हमें भी दुःख का अनुभव होता है, जब दूसरों को दुःखी देखते हैं, तब ऐसा होता है। पर साधु और संसारी की चिन्ता में अन्तर है। आपकी अपने लिए और हमारी आपके लिए—दूसरों के लिए। हमारा—साधुओं का संसार विद्या का संसार है तो संसारियों का संसार अविद्या का है।

"भव्य जीवो, संसार में रहो, कोई हानि नहीं है, बस इतना ही ध्यान रखना है कि संसार की माया तुम पर सवार न होने पाये। बाहर से संसार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में रहो, पर भीतर त्याग और निवृत्ति का भाव बना रहे। संसार को दीर्घ स्वप्न समझो। इस स्वप्न को स्वप्न ही मान लो, यह निश्चय कर लो कि एक मात्र सत्य धर्म ही है। जब तक आपके भीतर संसार रहेगा, तब तक बाहरी त्याग-तपस्या मात्र काया कष्ट ही है—साधना नहीं।"

अर्हन्मित्र मुनि की देशना लम्बी और तथ्यों से भरी थी। अरणक के मन में दीक्षा लेने की इच्छा बलवती हुई। श्रेष्ठी दत्त भी संसार छोड़कर मुनि बनना चाहते थे। सेठानी भी उनसे पीछे रहना नहीं चाहती थी। लेकिन ये विचार तीनों के मन में ही थे। सबसे पहले मन की बात अरणक ने कही—

"पिताजी, मैं चारित्र का पालन करके अपना मानव भव सफल करूँगा।"

"चारित्र का पालन बच्चों का खेल नहीं है, वत्स!" श्रेष्ठी दत्त ने कहा—"तूने आज तक ग्रीष्म की धूप नहीं देखी। अपने हाथ से पानी लेकर भी नहीं पिया। तपती दोपहरी में तू विहार कैसे करेगा? कभी अचित्त जल न मिला तो प्यासा कैसे रह पाएगा?"

"भोगी जब योगी बनता है तो उसकी दृष्टि बदल जाती है। उसके विचार पहले जैसे नहीं रहते।" अरणक ने पिता से कहा—"पूज्य तात, शक्ति विचारों से ही मिलती है। जब मेरे विचार बदले हैं तो चारित्र पालन की शक्ति भी आ ही गई है।"

"तो तू अकेला मुनि नहीं बनेगा।' श्रेष्ठी दत्त बोले—"तेरे साथ मैं भी दीक्षा लूँगा।"

"तो मैं आपसे पीछे रहूँगी?" सेठानी भद्रा ने पति से कहा—"मेरा भी तो परलोक है। मैं भी साध्वी बनूँगी।"

सेठानी भद्रा, श्रेष्ठी दत्त और श्रेष्ठिपुत्र अरणक—तीनों ने अर्हन्मित्र से दीक्षा ले ली। मुनि बनकर भी दत्त का पुत्रमोह कम नहीं हुआ। मन-ही-मन उन्होंने सोच लिया था कि अरणक मुनि के लिए मैं ही गोचरी करने जाया करूँगा। यह तो सुकुमार है। धूप में कुम्हला जाएगा।

साधु संघ ने तगरा नगरी से अन्यत्र विहार किया। साध्वी भद्रा तो साध्वी संघ में मिल गई। मुनि दत्त और मुनि अरणक पितामुनि और पुत्र-मुनि के नाम से भी संघ में जाने गए।

पितामुनि पुत्रमुनि पर अब भी लाड़ करते थे। वे स्वयं गोचरी को जाते और पुत्रमुनि के लिए आहार-पानी की व्यवस्था करते। उनके इस आचरण को देखकर कुछ मुनियों ने दत्त मुनि से कहा—

'मुने, आप अरणक मुनि के हित में अच्छा नहीं कर रहे। उन्हें स्वयं ही गोचरी के लिए जाने दीजिए। साधना तो स्वयं ही की जाती है।'

'मेरा अन्त तो अरणक से पहले होगा। मेरे बाद वह अपने सभी काम स्वयं ही करेगा।' मुनि-दत्त ने कहा—'अरणक विहार कर लेता है, यही बहुत है।'

अन्य मुनि मौन हो गए। पिता मुनिदत्त और पुत्र मुनिअरणक का यह सिलसिला चलता रहा—चलता रहा।

इसी क्रम में दत्तमुनि का आयुष्य पूर्ण हो गया तो वे परलोकवासी हो गये। उनके जाते ही अरणक मुनि मानों अनाथ हो गये। वे भिक्षा लेने नहीं जा पाये तो निराहार ही रह गये। तब संघ के मुनियों ने कई दिन अरणकमुनि को आहार लाकर दिया। लेकिन एक दिन सभी मुनियों ने अरणक-मुनि से स्पष्ट कह दिया—

'मुने, अब तुम किशोरवय के नहीं हो—युवा हो गये हो। चारित्र का पालन अपने बल पर ही होता है। तुम स्वयं गोचरी के लिए जाया करो।'

अरणक मुनि ने स्वीकार कर लिया। संयोग ऐसा बना कि ये दिन ग्रीष्म के दिन थे। पहले दिन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अरणक मुनि तपती धूप में गोचरी के लिए गये। यद्यपि धूप का ढलान था, फिर भी यह धूप अरणक मुनि के लिए असह्य थी। नंगे पाँव और नंगे सिर थोड़ी ही दूर चले कि उन्हें पसीना आने लगा। हवा भी बन्द थी। कनपटियों पर अंगारों के थप्पड़ से लगते थे। पाँव जल रहे थे। कोई वृक्ष आता तो थोड़ी देर छाँव में खड़े हो जाते, पर दूर-दूर तक कोई वृक्ष ही दिखाई नहीं दे रहा था। 'ऐसा कष्ट मुझे नित्य ही झेलना पड़ेगा।' अरणक मुनि सोच रहे थे—'ऐसी गरमी में लोग जीवित कैसे रह पाते हैं? मैंने सोचा भी नहीं था कि ग्रीष्म का यह कष्ट भी झेलना पड़ेगा।'

विवश-से चलते हुए अरणकमुनि बस्ती में पहुँच गये। एक भव्य भवन के नीचे छाँव थी और कुछ ठण्डक भी। अरणकमुनि उसी के नीचे खड़े होकर चैन की साँस लेने लगे। बस्ती में कोई कहीं आ-जा नहीं रहा है। सब अपने घरों में मानो गरमी से डरकर बन्द हो गये थे।

\+ \+ \+

एक सुन्दर युवती अपने शयन कक्ष में अकेली थी। एक दासी पंखा झल रही थी। वातायनों पर परदे पड़े थे। काफी राहत थी। इस सुन्दरी का पति बहुत दिनों से परदेश गया हुआ था। वह अपने मन की बातें अपनी दासी से कहकर ही समय काट लेती थी।

'चम्पा वातायन खोल दे।' सुन्दरी ने दासी से कहा—'वातायनों से धूप हट गई है। कुछ बाहर की हवा आने दे।'

दासी ने कक्ष की खिड़कियों पर पड़े परदे हटा दिये। उसने नीचे झांककर देखा तो अपनी मालकिन से बोली—

'स्वामिनी, तनिक देखो तो नीचे कौन खड़ा है? बड़ा सुन्दर सजीला-गठीला युवक है।'

'फिर पूछती क्या है?' सुन्दरी ने कहा—'उसे ऊपर ले आ।'

चम्पा बोली—

'लेकिन वह आपके काम का नहीं है। कोई मुनि है।'

'मुनि है तो भिक्षा दूँगी।' सुन्दरी बोली—'ऊपर तो आ ही जाएगा।'

यह कह सुन्दरी स्वयं वातायन तक गई और उसने नीचे झाँककर अरणकमुनि को खड़े देखा तो चम्पा से बोली—

'चम्पा! बड़ा सुकुमार है। गोरी देह तप कर लाल हो गई है। 'महाराज आहार लीजिए' यह कहकर तू मुनि को ऊपर ले आ।'

दासी खट्-खट्-खट् सीढ़ियाँ उतरते हुए नीचे गई और आहार का अनुरोध कर ऊपर ले आई। सुन्दरी ने उन्हें प्रणाम किया और बोली—

'मुने! क्षमा करें, आपकी शत्रुता किससे है? क्या अपनी देह से शत्रुता है जो उसे ग्रीष्म में जला रहे हो या फिर उठते यौवन से ही शत्रुता है जो उसका भोजन उसे नहीं दे रहे?

'मुने, विचार करो, देह के लिए तो आहार है पर आपके यौवन का आहार तो मैं ही हूँ। यौवन को भूखा रखना भी पाप है। मेरा यौवन भी भूखा है। व्यर्थ में काया को कष्ट देना तो मूर्खता है। यदि मुनि बनना इतना अच्छा होता, जितना आपने समझा है तो सारा जगत मुनियों से ही भर जाता।'

सुन्दरी की बातें सुन अरणक मुनि सोचने लगे—'बड़ी कठिनाई से मैं यहाँ तक आ सका हूँ? नित्य ही ऐसी भीषण गरमी में गोचरी के लिए आना पड़ेगा। सुन्दरी ठीक कहती है।'

अरणक मुनि सोच ही रहे थे कि सुन्दरी ने उनका हाथ पकड़ लिया। वे हाथ छुड़ा नहीं पाये। वह बोली—

'पलंग पर बैठिए। मैं पंखा झलूंगी। मैंने मोदक बनाए हैं। खाकर ठंडा पानी पीजिए।'

अरणक मुनि सुन्दरी के जाल में फंस ही गए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब वे भोगी थे। भोग से योग ग्रहण तो करते ही हैं, पर कच्चे मन वाले योगी से भोगी बन जाते हैं। एक झटके से ही अरणक मुनि बहुत नीचे गिर चुके थे।

अब वे रात-दिन भोगों में डूबे रहते। सुन्दरी उनका उबटन करती, स्नान कराती, पंखा झलती और वे उसी को अंक में समेटे पड़े रहते। रात तो रात थी ही, उनके लिए अब दिन भी रात ही था। ऐसे ही उनके दिन गुजरने लगे।

+ + +

अरणक मुनि गोचरी से नहीं लौटे। संध्या हो गई, फिर रात भी हुई। संघ के मुनियों को चिन्ता हुई, वे सब उन्हें ढूँढने निकले। उनके साथ में श्रावक भी थे। रात इसी चर्चा में बीती कि आखिर मुनि अरणक कहाँ लापता हो गए? अपना कर्तव्य पूरा कर साधुओं ने साध्वियों के उपाश्रय में संवाद भिजवा दिया कि साध्वी भद्रा के संसारी नाते से पुत्र मुनि अरणक गोचरी के लिए गये थे, वे अभी तक नहीं लौटे हैं।

माँ की ममता का सागर सीमा तोड़ गया। साध्वी भद्रा व्याकुल होकर साधारण माँ की तरह रोने लगी। वे उपाश्रय छोड़कर अरणक को ढूँढने निकल पड़ीं। वे पागलों की तरह जोर-जोर से आवाज लगातीं—बेटा अरणक, तू कहाँ है? अरणक तू मेरे पास आ जा, बेटे! वे जब चलते-चलते, बोलते-बोलते थक जातीं तो किसी वृक्ष के मूल में बैठकर बैठ जातीं। थकावट की अति के कारण बैठे-बैठे ही सो जातीं। फिर उठकर चल देतीं। बस्ती वाले कहते—शायद बेचारी का बेटा मर गया है, सो उसके मोह में पागल होकर उसे पुकारती फिरती है।

साध्वी भद्रा को पागल समझकर बस्ती के बच्चे उनके पीछे-पीछे तालियाँ बजाकर चलते। कभी उनकी आवाज के साथ शरारती बच्चे भी आवाज देते—ओ अरणक! तू कहाँ है?

यों ही समय बीतता रहा। साध्वी अरणक को ढूँढ़ती रही और अरणक भोगों में डूबता रहा। एक दिन संयोग बना। साध्वी भद्रा उक्त सुन्दरी के भवन के नीचे ही चिल्ला रही थी। सुन्दरी के अंक पाश में लेटे अरणक के कानों में अपने नाम की आवाज पड़ी तो वे विद्युत के झटके की तरह उठे। सुन्दरी चिल्लाती रही—सुनो तो, सुनो स्वामी, कहाँ जाते हो? पर अरणक कुमार ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। वे धड़ाधड़ सीढ़ियाँ उतरते हुए साध्वी माँ के पास पहुँचे—माँ! मैं तेरा अरणक हूँ।

साध्वी भद्रा सुध-बुध खोकर स्तब्ध-सी अपने सामने खड़े युवक को देखने लगी। उसका भेष बड़ा आकर्षक था। रेशमी अधोवस्त्र, रेशमी ही उत्तरीय और पैरों में जड़ाऊ जूते। सचिक्कण काले केशों में सुगन्ध आ रही थी। बड़ी देर बाद साध्वी ने कहा—

"तू कोई ठग है। तू मेरा अरणक नहीं हो सकता। मेरा अरणक तो वह था, जिसने विवाह करने से इन्कार कर दिया था। मेरे अरणक ने तो माता-पिता से पूर्व दीक्षा लेने का निश्चय प्रकट किया था। मेरे अरणक के विचारों में ऐसा बदलाव आया था कि दीक्षा से पूर्व उसके पिता ने कहा था—पुत्र, तूने आज तक ग्रीष्म की धूप नहीं देखी, अपने हाथ से पानी लेकर भी नहीं पिया। दोपहरी में तू विहार कैसे करेगा और कभी अचित्त जल न मिला तो प्यासा कैसे रह पायेगा?

"युवक! इसके उत्तर में मेरे पुत्र अरणक ने कहा था—भोगी जब योगी बन जाता है तो उसकी दृष्टि बदल जाती है। उसके विचार पहले जैसे नहीं रहते। शक्ति विचारों से मिलती है। जब मेरे विचार बदले हैं तो चारित्र-पालन की शक्ति आ ही गई है।

"तो तू मेरा पुत्र कैसे हो सकता है? मेरे पुत्र में तो चारित्रपालन की शक्ति थी। वह योगी था, पर तू तो भोगी है। मेरा अरणक तो मुनि था, तू मेरा अरणक कैसे हो सकता है? तू मुझे छलने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आया है। पर मैं तेरे भुलावे में नहीं आ सकती। मैं तो अरणकमुनि को ढूंढ रही हूँ। तू मेरा नहीं, जिसका है, उसी के पास जा।"

कहते-कहते साध्वी रो पड़ी और मुड़कर आगे चल दीं। उन्होंने पुनः आवाज लगाई—"योगी अरणक, मुनि अरणक चारित्रपालन की शक्ति रखने वाले अरणक, तू कहाँ है ?"

अरणक का हृदय चीत्कार कर उठा। वह दौड़ कर साध्वी माँ का मार्ग रोककर खड़ा हो गया—

"माँ, मैं तेरा अरणक हूँ। मैं मुनि हूँ। मैं भटक गया था, पर तूने तो बाँह पकड़कर मुझे किनारे खड़ा कर दिया है। मैं प्रायश्चित्त करूँगा। माँ तू ही बता जो व्यक्ति गिर सकता है, क्या वह उठ नहीं सकता ? माँ मुझमें उठने की शक्ति है, मैं उठूँगा।

"माँ, ग्रीष्म से व्याकुल होकर मैं नारी के जाल में फँसा था तो मैं ग्रीष्म की आतापना सहकर ही संथारा करूँगा।"

माँ की आँखों में खुशी की चमक आ गई—

"तू ही है मेरा अरणक। चल उपाश्रय चल। गुरु महाराज तुझे दिशा देंगे।"

उपाश्रय में पहुँचकर अरणक मुनि ने गुरुदेव अर्हन्मित्र मुनि से उष्ण आतापना द्वारा साधना करने की अनुमति माँग ली।

अरणक मुनि तवे की तरह तपती तप्त प्रस्तर-शिला पर लेट गये। भयंकर गरमी थी। उनकी देह जल रही थी, पर वे देह को आत्मा से भिन्न समझ कर ध्यानस्थ थे। उनका शरीर झुलसने लगा। समता भाव में डूबे अरणक मुनि ने देह छोड़ दी और देवलोक में देव बने। वे जितने नीचे गिरे थे उससे भी अधिक ऊँचे उठ भी गये।

□ □ □

भोगावली कर्म यदि शेष होते हैं तो बड़े-से-बड़ा साधक भी भटक जाता है। लेकिन भोगकाल पूरा होते ही वह पुनः आत्मोद्धार में लग जाता है। श्रेणिकपुत्र नन्दिषेण के साथ भी ऐसा ही हुआ था।

(शेष पृष्ठ ५०७ का)

तरों तक तू इसे, यह तुझे, तू इसे, यह तुझे के मारने की परम्परा चलती रहेगी। यह परम्परा है अग्नि से अग्नि को बुझाने अथवा रक्त को रक्त से धोने की परम्परा। क्रोध उपशम से और शत्रुता क्षमा से से ही मिट सकते हैं। शरणगत को छोड़ दे पुत्र !'

कुलपुत्र ने बन्धन खोल दिये और शत्रु से ऐसे मिला जैसे अपने भाई से मिल रहा हो। दोनों की आँखों में हर्ष के आँसू थे। ठकुरानी की आँखें भी गीली हो गईं। न जाने कब तक चलती, वैर की यह परम्परा। उसका अन्त हुआ ज्ञान, विवेक और धर्म की धारणा से। जल से रक्त का दाग धुला, जल ने ही अग्नि को बुझा दिया, मैत्री ने वैर की जड़ें काट डालीं और वैरी, भाई एवं मित्र—दोनों बन गया दूना लाभ पाया कुलपुत्र ने। भाई को खोया तो भाई और मित्र—दोनों एक ही व्यक्ति में पा लिए।

क्रोध हमारा जन्मजात शत्रु है। हमारे जन्म के के समय यह हमारे साथ ही जन्म लेता है और अवसर की तलाश में सोता रहता है। अवसर मिलते ही यह एकदम उठता है और हमारा हितैषी बनकर आता है। बड़ी चतुराई से यह बुद्धि को भगाकर उसकी जगह बैठ जाता है। हम भी इसे अपना हितैषी समझकर इसकी बातों में आ जाते हैं और जो यह कहता है वही करते हैं। यह स्थाई अड्डा बनाकर वैर का रूप धारण करके हमारा और भी अहित करता है। यह एक ही नहीं, हमारे कई जन्म बिगाड़ता है। इससे सावधान रहें। इसकी बातों में न आयें। इसकी बातों में आकर ही तो कुलपुत्र बारह वर्ष तक जंगलों की खाक छानता फिरा था। अन्ततः उसने क्रोध को हटाकर सच्चे शत्रु को भगाने में सफलता पाई। □

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org